जनसत्ता

24 जून, 2019

पाकिस्तान का पेच

पाकिस्तान करतारपुर गलियारा खोलने पर राजी हुआ, तो उम्मीद बनी थी कि गुरुद्वारा दरबार साहिब के दर्शन करने जाने वाले भारतीय नागरिकों को काफी सुविधा हो जाएगी। मगर अब पाकिस्तान जिस तरह उसमें अड़चनें पैदा कर रहा है, उससे इसकी उम्मीद धुंधली ही बनी हुई है। गुरद्वारा दरबार साहिब, करतारपुर पंजाब की सीमा से लगभग सटा हुआ है, मगर बगैर वीजा के जाने की इजाजत न होने की वजह से बहुत सारे लोग वहां नहीं जा पाते। जो जाते भी हैं, उन्हें लंबा रास्ता तय करना पड़ता है। इसलिए भारत सरकार लंबे समय से मांग कर रही थी कि करतारपुर गलियारा खोल दिया जाए। इमरान खान की सरकार बनी, तो वे इसके लिए राजी हो गए। मगर भारत की तरफ से जो प्रस्ताव रखे गए हैं, उन्हें पाकिस्तान मानने को तैयार नहीं है या फिर कई प्रस्तावों पर खामोश है। भारत की तरफ से प्रस्ताव है कि हर रोज पांच हजार दर्शनार्थियों को जाने की इजाजत दी जाए। विशेष दिनों में यह संख्या दस हजार तक बढ़ी दी जाए। दर्शनार्थियों में भारतीय नागरिकों के अलावा दूसरे देशों में रह रहे उन लोगों को भी इस रास्ते से जाने की इजाजत हो, जिनके पास भारत की नागरिकता है। फिर दर्शनार्थियों को जत्थे के रूप में भी जाने की इजाजत मिले।

मगर पाकिस्तान ने इन सभी मांगों को मानने से इनकार कर दिया है। उसका कहना है कि हर दिन सिर्फ सात सौ दर्शनार्थियों को जाने की इजाजत होगी, वह भी विशेष परमिट पर। दूसरे देशों में रह रहे भारतीय नागरिकों को परमिट पर जाने की इजाजत नहीं होगी। पंद्रह से अधिक लोग समूह में नहीं जा सकते। इससे करतारपुर गलियारा खोलने का मकसद पूरा नहीं होता दिख रहा। इन कड़ी शर्तों के पीछे पाकिस्तान का तर्क है कि अधिक संख्या में श्रद्धालुओं को जाने की इजाजत देने से आतंकवादी गतिविधियों पर नजर रखने में दिक्कत आएगी। समूह में जाने की खुली छूट देने से पहचान करना मुश्किल होगा कि वास्तव में सभी लोग दर्शन के लिए ही जा रहे हैं या उनमें कुछ शरारती तत्त्व भी शामिल हैं। भारत में रह रहे नागरिकों की पहचान और विशेष स्थितियों में उन पर नजर रखना आसान होगा, जबकि दूसरे देशों में रह रहे भारतीय नागरिकों पर नजर रखना कई तरह की मुश्किलें पैदा करेगा। पाकिस्तान के इस तर्क में बहुत दम नजर नहीं आता।

यह ठीक है कि दोनों देश दहशतगर्दी का दंश झेल रहे हैं और तमाम कड़ाइयों के बावजूद आतंकवादी घुसपैठ पर काबू पाना चुनौती बना हुआ है, मगर करतारपुर गलियारे को खोलने से इस समस्या से पार पाने में कोई दिक्कत नहीं आएगी। भारत सीमा से करतारपुर का रास्ता बहुत लंबा नहीं है। इतने छोटे रास्ते से होकर गुजरने वाले श्रद्धालुओं पर नजर रखना बड़ी बात नहीं है। फिर हर श्रद्धालु का पंजीकरण होगा, तो उसकी पहचान करना और यह जानना कि कितने लोग दर्शन के लिए गए और कितने लोग वापस लौटे, कोई पेचीदा काम नहीं है। चाहे वे समूह में जाएं या अकेले। भारत में अमरनाथ गुफा और मानसरोवर यात्रा के समय भी यात्रियों की सुरक्षा के मद्देनजर ऐसे ही इंतजाम किए जाते हैं। करतारपुर जाने वाले यात्रियों पर सुरक्षा की दृष्टि से भारत की भी नजर होगी, इसलिए पाकिस्तान को कोई मुश्किल पेश नहीं आएगी। मगर उसकी आदत है भारत के साथ संबंध बेहतर बनाने का दिखावा करने और फिर अड़ंगेबाजी करते रहने की, सो करतारपुर गलियारा मामले में भी वह वही कर रहा है।

शांति का संकट

ईरान पर हमले करने से अमेरिका भले पीछे हट गया हो, लेकिन इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि आने वाले दिनों में यह खतरा और बढ़ेगा। फारस की खाड़ी में जिस तरह की मोर्चाबंदी हो चुकी है, अत्याधुनिक परमाणु मिसाइलों से सुसज्जित विशालकाय अमेरिकी नौसेना के बेड़े खाड़ी में खड़े हैं, लड़ाकू जहाज आकाश में चौबीसों घंटे मंडरा रहे हैं, तो यह दुनिया को गंभीर संकट की ओर धकेलने का संकेत है। युद्ध भले न हो, लेकिन यह तनाव युद्ध से ज्यादा विनाशक तस्वीर पेश कर रहा है। हाल में मामला तब गरमाया जब अमेरिका का एक ड्रोन विमान मार गिराया गया। किसने गिराया, यह अलग और विवाद का विषय है। इस पर परस्पर विरोधी दावे किए जा रहे हैं। इसकी तोहमत अमेरिका ने ईरान पर मढ़ी है, जबकि ईरान लगातार इसका खंडन कर रहा है। ईरान पर हमले का फैसला ट्रंप ने इसी घटना के बाद किया। लेकिन ईरान पर हमला शुरू होने के ठीक दस मिनट पहले ट्रंप ने अचानक जिस तरह हमला नहीं करने का फैसला कर डाला, उससे साफ है कि अमेरिका अपने को इस संकट में ईरान के मुकाबले कहीं ज्यादा घिरा हुआ पा रहा है और नफे-नुकसान के आकलन में लगा है। इस बीच, ईरान पहले ही यूरेनियम संवर्धन का काम तेज करने की बात कह चुका है। जाहिर है, राष्ट्र की सुरक्षा के लिए परमाणु हथियार बनाने की दिशा में उसके कदम और तेजी से बढ़ेंगे। तब कैसे शांति के बारे में सोचा जा सकता है?

दोनों देशों के बीच तनातनी तभी से ज्यादा बढ़ी है जब अमेरिका ने ईरान के साथ किए परमाणु समझौते से अपने को अलग कर लिया था। अमेरिका के सहयोगी राष्ट्र भी इसे ट्रंप की हठधर्मिता ही बताते रहे हैं। जाहिर है, अमेरिका ईरान को परमाणु हथियार बनाने की आड़ में विवाद में फंसा कर उस पर हमला करने की तैयारी में लंबे समय से है। ठीक ऐसा ही उसने इराक के साथ किया था। इराक पर जैविक हथियार बनाने का आरोप लगा कर उस पर हमला किया गया, लेकिन बाद में इराक के पास जैविक हथियार जैसा कुछ नहीं मिला था। अमेरिका इराक की तरह ही ईरान के तेल पर भी कब्जा करना चाहता है। लेकिन जिस तरह से रूस ईरान के साथ खड़ा है और चीन भी अमेरिका के खिलाफ है, उस सूरत में ईरान पर हमला आसान नहीं है। पिछले डेढ़ महीने में ओमान की खाड़ी से गुजरने वाले तेल टैंकरों पर हमले की घटनाएं तो महज युद्ध का कारण बनाने के लिए हैं। दुनिया में सबसे ज्यादा तेल टैंकर इसी खाड़ी मार्ग से गुजरते हैं, इस लिहाज से भी यह दुनिया का सबसे संवेदनशील इलाका है। ऐसे में अगर युद्ध छिड़ा तो सबसे बड़ा और पहला संकट अंतरराष्ट्रीय तेल कारोबार पर आएगा। इसे अमेरिका भी बखूबी समझ रहा है और इसीलिए दुनिया के कई देशों ने उस पर युद्ध टालने के दबाव भी डाला।

ट्रंप अगले साल राष्ट्रपति चुनाव में फिर मैदान में होंगे। फ्लोरिडा में तीन दिन पहले उन्होंने प्रचार अभियान की शुरुआत भी कर दी। इसलिए वे ईरान के मुद्दे को अभी जिंदा रखेंगे, ताकि अमेरिका जनता को पहले की तरह ही यह भरोसा दिला सकें कि ईरान जैसे देश से निपटने की ताकत उन्हीं में है। इस बात को ट्रंप भी जानते हैं और दुनिया के सारे ताकतवर देश भी कि आज परमाणु हथियारों के युग में युद्ध किसी भी समस्या का समाधान नहीं है। युद्ध का मतलब है- मानव जाति का विनाश। ऐसे में युद्ध टालने और शांति के उपाय खोजने में ही मानव कल्याण है।

कल्पमेधा

स्वतंत्रता यानी दायित्व, इसलिए अधिकांश लोग इससे डरते हैं।
-बर्नार्ड शॉ

चुनाव सुधार और आशंकाएं

आलोक मेहता

भारत के ग्रामीण मतदाता भी अब बहुत समझदार हो चुके हैं। वे हित-अहित समझते हैं। वे विकास कार्यों को निरंतर जारी रखना चाहते हैं। अस्थिर सरकारों के नतीजे वे देख चुके हैं। फिर केंद्र और राज्यों की सरकारों में टकराव से दिल्ली ही नहीं, पश्चिम बंगाल, आंध्र प्रदेश जैसे राज्य की जनता विकास तथा कल्याण कार्यों के गड़बड़ाने से परेशान रहती है। संघीय ढांचे से लाभ भी तो होना चाहिए।

करगिल की ऊंची हिम शृंखलाओं पर या साठ डिग्री की आग जैसे रेगिस्तान में तैनात सिपाही क्या किसी भय से सुरक्षा की मांग करते हैं? गुर्दे, लीवर या दिल का अति संवेदनशील आपरेशन करने वाले अनुभवी डॉक्टर के हाथ क्या भय से कांपते हैं? हजारों फीट ऊंचाई पर विमान उड़ाने वाले क्या हवा-पानी, बादल के झटकों से घबराते हैं? विशालकाय पुल बनाने वाले इंजीनियर पुल के गिर सकने की संभावनाएं सोचकर क्या काम बंद कर देते हैं? नहीं, कभी नहीं। फिर सार्वजनिक जीवन में अपने कर्म-वचन पर भरोसा कर सकने वाले कई नेताओं की दुनिया के आदर्श लोकतांत्रिक भारत में लोकसभा और विधान सभाओं के चुनाव एक साथ होने के प्रस्ताव मात्र पर घबराहट क्यों हो रही है? संविधान निर्माताओं में अग्रणी डा. भीमराव आंबेडकर, जेबी कृपलानी, डा. राममनोहर लोहिया, पंडित दीनदयाल उपाध्याय, पंडित जवाहरलाल नेहरू, इंदिरा गांधी, चंद्रशेखर, कामरेड होमी दाजी, ज्योति बसु जैसे शीर्षस्थ नेताओं की तरह विभिन्न राजनीतिक दलों के नेताओं ने 1952, 1957, 1962, 1967 में लोकसभा और विधान सभाओं के चुनाव में हार-जीत की परवाह किए बिना चुनाव लड़े। विजय से सत्ता मिली या पराजय से फिर संघर्ष और सफलता के अनुभव मिले। लेकिन किसी ने कभी कोई आपत्ति नहीं की। फिर अब 'एक देश, एक चुनाव' के लिए व्यापक सहमति और चुनाव व्यवस्था में आवश्यक सुधार-संशोधन पर आशंकाएं-आपत्तियां क्यों उठनी चाहिए? राष्ट्रपति ने संसद की संयुक्त बैठक को संबोधित करते हुए खर्चीली और लगातार चुनावी तूफान की व्यवस्था से निजात पाकर एक साथ चुनाव के प्रस्ताव पर विस्तृत विचार-विमर्श और निर्णय की सलाह दी।

फिर भी कांग्रेस, समाजवादी पार्टी, बहुजन समाज पार्टी, तृणमूल कांग्रेस, द्रमुक और कम्युनिस्ट पार्टियों के नेताओं के साथ प्रगतिशील कहलाने वाले गैर-राजनीतिक वर्ग ने भी गंभीर आशंकाएं और आपत्तियां व्यक्त की हैं। बहस में शामिल होकर सकारात्मक सुझाव-सिफारिशें रखने के बजाय वे ऐसे किसी लोकतांत्रिक कदम से संविधान की मूल संघीय भावना, क्षेत्रीय स्वायत्तता और अस्तित्व के खत्म होने, दो-तीन दलीय व्यवस्था या एक दलीय और एक नेतृत्व वाली तानाशाली तक के खतरे बताने लगे हैं। यह क्या उनकी विचारधारा, सुविधा या कमजोरी है? राष्ट्रीय राजनीतिक दल हों अथवा क्षेत्रीय पार्टियां, क्या बार-बार के चुनाव के लिए हजारों करोड़ रुपए बहाने में सुख और संतोष का अनुभव करती हैं? पिछले चुनाव इस बात के प्रमाण हैं कि सरकारी खजाने से चुनाव आयोग के लगभग दस हजार करोड़ रुपए के अधिकृत खर्च के अलावा राजनीतिक पार्टियां और उम्मीदवार चुनावों में कुल मिला कर दो से पांच लाख करोड़ रुपए तक खर्च कर देते हैं। कुछ पार्टियों में तो केवल उम्मीदवार बनने के लिए बीस से पचास करोड़ रुपए वसूल लिए जाते हैं, फिर भले ही वह चुनाव हार जाए। इससे पार्टी के शीर्ष नेताओं का खजाना अवश्य भर जाता है। राजनीतिक दल सत्ता में हों या विपक्ष में, उनके कार्यकर्ताओं, पदाधिकारियों को पूरे साल किसी न किसी प्रदेश के चुनाव के लिए भागते-दौड़ते रहना पड़ता है। केंद्र या प्रदेशों के मंत्री पार्टी नेतृत्व के आदेशानुसार चुनावों के लिए अधिक सक्रिय रह कर अपने मंत्रालयों और विभागों के कामकाज पर कम समय दे पाते हैं। अर्धसैनिक बल तो निरंतर चुनावी ड्यूटी में लगे रहते हैं।

असली समस्या आचार संहिता की है। चुनाव से करीब तीन महीने पहले आचार संहिता लागू हो जाती है। इस कारण कुछ सरकारी निर्णय या तो जल्दबाजी में होते हैं या फिर महीनों के लिए लटक जाते हैं। फिर चुनाव के बाद नई सरकार, नए मंत्री, अधिकारियों के विभागों में परिवर्तनों से प्रशासनिक कामकाज ढर्रे पर लाने में तीन महीने लग जाते हैं। ताजा उदाहरण पिछले वर्ष के अंत में हुए मध्यप्रदेश विधान सभा के चुनाव और फिर इस वर्ष मई महीने तक हुए लोकसभा चुनाव के कारण स्कूली बच्चों की ई-लर्निंग योजना में रुकावट आने का है। इस योजना के लिए कुछ जिलों में धनराशि भी जुटाई गई, लेकिन सरकारी स्कूलों के लिए सरकारी अनुमति और भागीदारी चाहिए थी। दो वर्षों के प्रयास के बाद अंतिम चरण में क्रियान्वयन से पहले आचार संहिता लागू हो गई। नतीजा यह हुआ कि क्रियान्वयन लगभग आठ महीने बाद जून-जुलाई में हो पाएगा। इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण अस्पताल, सड़क, स्कूल, पुस्तकालय, आवास संबंधी पचासों प्रस्ताव

और निर्णय राज्यों से लेकर केंद्र सरकार तक में अट-के रहे। सरकार को सेवा देने वाले गैर सरकारी संस्थानों, छोटे उद्यमियों द्वारा दी गई सेवाओं के भुगतान महीनों के लिए लटक गए। इससे उनकी ही नहीं, अर्थ व्यवस्था की गाड़ी भी अटक गई।

राजनीतिक दलों की एक चिंता समय से पहले लोकसभा और विधान सभा में बहुमत नहीं रहने, बड़े दलबदल और सरकारें गिरने के बाद की स्थिति को लेकर है। इसका उत्तर यह है कि कार्यकाल निश्चित होगा। यदि सांसद या विधायक स्वयं दुबारा चुनाव थोपेंगे, तो बचे हुए कार्यकाल के लिए चुनाव होंगे। वैसे इस संभावना को देखकर स्थिरता बने रहने के स्थिति अधिक रहेगी। इसमें कोई शक नहीं कि 'एक देश एक चुनाव' के नए बदलाव के साथ चुनाव सुधार के कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण प्रस्तावों पर भी संसद व सुप्रीम कोर्ट से स्वीकृति ले ली जाए, ताकि अपराधी तत्वों और भारी चुनावी खर्चों पर भी अंकुश लग सके।

एक देश एक चुनाव के आलोचकों का एक तर्क पश्चिमी देशों के लोकतंत्र और संघीय ढांचे को लेकर है। जब वे अमेरिका का नाम लेते हैं, जहां राज्यों के चुनाव अलग-अलग होते हैं, तब उन्हें यह मानना चाहिए कि वहां प्रमुख राजनीतिक दल दो ही हैं। वे भारत में पचीसों राजनीतिक दलों की आवश्यकता बताते हैं। वे यह नहीं समझते कि वहां दलों, उम्मीदवारों और राष्ट्रपति तक के चुनावी खर्च की पारदर्शिता होती है। वहां औसतन मतदाता समान आय वर्ग के होते हैं। यदि वे यूरोपीय देशों की बात करें, तो जर्मनी, ब्रिटेन और फ्रांस में भी राजनीतिक दलों की संख्या सीमित है। जहां तक क्षेत्रीय दलों की बात है, जर्मनी के बवेरिया जैसे राज्यों में दशकों तक क्षेत्रीय दल का अस्तित्व भी बना रहा और राष्ट्रीय पार्टियों का महत्त्व बरकरार रहा। भारत के हाल के चुनावों ने भी साबित किया कि ओड़िशा, तमिलनाडु, केरल, पश्चिम बंगाल, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, राजस्थान और पूर्वोत्तर क्षेत्र के राज्यों में मतदाताओं ने विधान सभाओं और लोकसभा में अलग-अलग दलों को वोट दिए। क्षेत्रीय हितों की रक्षा यदि राष्ट्रीय राजनीतिक दल करते रहें और प्रादेशिक क्षत्रपों का महत्त्व बनाए रखें, तो उनकी महत्ता बनी रह सकती है।

भारत के ग्रामीण मतदाता भी अब बहुत समझदार हो चुके हैं। वे हित-अहित समझते हैं। वे विकास कार्यों को निरंतर जारी रखना चाहते हैं। अस्थिर सरकारों के नतीजे वे देख चुके हैं। फिर केंद्र और राज्यों की सरकारों में टकराव से दिल्ली ही नहीं, पश्चिम बंगाल, आंध्र प्रदेश जैसे राज्य की जनता विकास तथा कल्याण कार्यों के गड़बड़ाने से परेशान रहती है। संघीय ढांचे से लाभ भी तो होना चाहिए। साठ के दशक से लेकर आज तक वही राजनीतिक दल अच्छी सफलता पाते आए हैं, जिनका संगठन मजबूत रहा है। किसी समय कांग्रेस पार्टी या कम्युनिस्ट पार्टियों का संगठनात्मक ढांचा सुदृढ़ होता था। प्रादेशिक नेतृत्व और समर्पित कार्यकर्ताओं के बल पर वे चुनावी सफलता पाती रही। भारतीय जनता पार्टी ने पिछले वर्षों के दौरान विभिन्न प्रदेशों में संगठन मजबूत किया। लेकिन अब क्षेत्रीय अथवा जातीय हितों के नाम पर चलने वाली पार्टियां धीरे-धीरे आधार खो चुकी हैं। जातीय समीकरण से चुनाव परिणामों का आकलन करने वाले गलत साबित हो रहे हैं। इसलिए चुनावी सुधार के साथ जनता से जीवित संपर्क ही लोकतंत्र को मजबूत करेगा।

पर्यावरण के दोस्त

मनीष वैद्य

दुनिया मेरे आगे

हम खेतों में सिंचाई के लिए पानी का अंधाधुंध उपयोग करते हैं। साठ फीसदी भू-जल का उपयोग सिर्फ सिंचाई के लिए हो रहा है। साथ ही बिजली या डीजल की बड़ी मात्रा खपत करते हैं, लेकिन आदिवासी समाज ऐसी युक्ति का इस्तेमाल करते हैं जो उनके पूर्वजों ने बिना किसी पढ़ाई के परंपरा और अर्जित अनुभव से विकसित की थी। यह आज भी देखने को मिलती है और इसका अब भी कोई सानी नहीं। लगता है कि इनसे हमें अभी बहुत कुछ सीखने की जरूरत है।

पश्चिम मध्यप्रदेश का निमाड़ इलाका सतपुड़ा पर्वत शृंखला की ऊंची-नीची पहाड़ियों की ऊसर जमीन का पठारी क्षेत्र है। इंदौर शहर से पौने दो सौ किमी दूर बडवानी का पाटी कस्बा एक छोटे पठार पर बसा है। इससे आगे छोटे-बड़े पहाड़ों का सिलसिला और उन पर बसे छोटे आदिवासी गांव फलिए का सफर पैदल ही तय करना पड़ता है। इसमें खासी मशक्कत की वजह से हांफते-हांफते जान निकलने लगती है। पूरे रास्ते पहाड़ वीरान और उसर पड़े हैं। न पेड़ है और न कोई बड़ी नदी। नर्मदा बहुत पहले ही छूट जाती है। दूर-दूर तक पानी का कोई सोता नहीं नजर आता। बस कुछ पहाड़ी नाले हैं जो बारिश के बाद ज्यादा दिन साथ नहीं देते। कई बरसों से यह इलाका सूखा घोषित किया जाता रहा है। कुछ कुएं और नलकूप भी हैं, पर ज्यादातर सूखे। कहीं छोटे-छोटे खेत जरूर दिख जाते हैं। यहां के लोग बड़ी तादाद में मजदूरी करने हर साल शहरों का रुख कर लेते हैं।

स्वाभाविक रूप से लगा कि बारिश के बाद तो यहां खेती का कोई काम नहीं। पानी ही नहीं, तो खेती कैसी। हमने साथ चल रहे एक स्थानीय आदिवासी युवक गोरख्या से पूछ लिया कि यहां सिंचाई से खेती तो नहीं होती होगी। उसने आशा के विपरीत मुस्कराते हुए कहा कि नहीं, यहां भी सिंचाई होती है हालांकि बहुत कम होती है। सहसा विश्वास नहीं हुआ। जिज्ञासा हुई कि आखिर इन हालात में ये लोग अपने खेतों को पानी कैसे देते होंगे, जबकि आसपास न अब तक कोई कुआं नजर आया था और न ही कोई अन्य साधन। इस सवाल पर गोरख्या कुछ बोला नहीं। बस मुस्करा दिया। फिर बोला कि खुद ही देख लेना। इसके बाद लंबे-लबे डग भरता हुआ हमसे आगे चलता रहा। पर हमारे मन में जिज्ञासा बढ़ती जा रही थी कि यहां पानी कैसे और कहां से आता होगा। थका देने वाले इस लंबे पांच घंटे के सफर का पहला पड़ाव था पीपरकुंड। यह पहाड़ों के पार एक दूसरे पहाड़ पर बसा है। इस वन ग्राम में न बिजली है और न ही सड़क। आठ फलियों को मिला कर ढाई सौ लोगों की बस्ती है। गांव से लगे घने जंगल के आसपास कुछ खेती की जमीन। यहां किसी के पास तीन तो किसी के पास छह एकड़ तक खेती की जमीन है।

पहाड़ सिंह के खेत पर यह देख कर हम दंग रह गए कि छोटी-छोटी घुमावदार नालियों से रेंगते हुए पानी इस सूखे पहाड़ पर भी छलछलाता पहुंच रहा था। पहाड़ सिंह ने बताया कि यह उनका पारंपरिक तरीका है, जिसमें बिना बिजली या डीजल और बिना किसी उपकरण के सिर्फ घुमावदार नालियों के जरिए ही सैकड़ों फुट नीचे से पहाड़ों पर पानी चढ़ाया जाता है। पहले थोड़ा ऊपर, फिर नीचे फिर थोड़ा ऊपर, फिर नीचे- इस तरह बहते हुए पानी को गुरुत्वाकर्षण बल से ऊपर की ओर ले जाया जाता है। इसकी दूरी आधा से डेढ़ किमी तक होती है।

यह विज्ञान के उसी सिद्धांत पर काम करता है जिसमें पहाड़ी नालों में बहते पानी को 'डाउन स्ट्रीम' से 'अप स्ट्रीम' में ले जाया जाता है। इसी तकनीक को स्थानीय बोली में पाट की खेती कहते हैं। हालांकि यह इतना आसान भी नहीं है, पर इन आदिवासियों की जिंदगी मेहनत से कब घबराती है! बकौल पहाड़ सिंह पहले तो बहुत लंबी-लंबी नालियां खोदनी पड़ती है, फिर इसकी लगातार देखभाल करनी पड़ती है और साल-दर-साल इसकी गाद हटानी पड़ती है।

यह तभी तक पानी दे सकता है, जब तक कि नाले में पानी हो। नाले का पानी सूख गया तो सारी मेहनत बेकार। कातर फलिए के वेलसिंह भी एक किलोमीटर दूर से नाली लाकर खेती कर रहे हैं। बीस साल पहले उसके पिता ने ये नालियां खोद कर पाट तैयार किया था, लेकिन बीच में बिजली आ गई तो हमने इसे बंद कर बिजली से सिंचाई शुरू कर दी। पर बिजली कटौती और भारी भरकम बिल आने से अब फिर पाट से पानी चढ़ा रहे हैं।

इलाके में कई आदिवासी किसान पीढ़ियों से इस तरह पानी के साथ देश की बिजली और डीजल भी बचा रहे हैं। यह सब तरह से निरापद और प्राकृतिक होने के साथ-साथ बिजली और डीजल बचाने वाली परंपरागत पद्धति है। हमारे 'इको सिस्टम' या पर्यावरण तंत्र को यथावत रखते हुए ऐसे वैकल्पिक संसाधनों और तकनीकों को सहेज कर इन्हें और परिवर्धित करने की जरूरत है, ताकि पानी और उर्जा को बचाया जा सके।

चौपाल

किसी भी मुद्दे या लेख पर अपनी राय हमें भेजें। हमारा पता है : ए-8, सेक्टर-7, नोएडा 201301, जिला : गौतमबुद्धनगर, उत्तर प्रदेश

आप चाहें तो अपनी बात ईमेल के जरिए भी हम तक पहुंचा सकते हैं। आइडी है : chaupal.jansatta@expressindia.com

मौत और सवाल

बिहार में चमकी बुखार से मरने वाले बच्चों की संख्या बढ़ती जा रही है। प्रदेश के दूसरे हिस्सों में भी यह बुखार फैल रहा है। मीडिया की सक्रियता से यह मामला प्रकाश में आया और सरकार चेती, वरना किसी की भी नजर इस ओर नहीं जाती। किसी पूंजीपति, उद्योगपति, मंत्री, नेता या नौकरशाह का बच्चा किसी अस्पताल की लापरवाही में अगर मर जाता तो सभी अस्पतालों के लिए नए नियम बना दिए जाते, उस अस्पताल की मान्यता रद्द करके डॉक्टर को जेल भिजवा दिया जाता। लेकिन दुर्भाग्य यह है कि मुजफ्फरपुर में मरने वाले बच्चों में कोई बच्चा ऐसे अमीर और ताकतवर लोगों का नहीं है। मरने वाले बच्चे सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े हैं। इसीलिए यहां कोई कानून लागू नहीं है। देश-प्रदेश की सरकार जश्न मनाने में व्यस्त हैं। कुछ सांसदों ने लोकसभा में यह मुद्दा उठाया है। आम लोगों और विपक्षी नेताओं को चाहिए कि वे ऐसे मुद्दे पर सड़क से सदन तक संघर्ष कर इसे राष्ट्रीय स्तर पर उठाएं। मीडियाकर्मियों और नेताओं को भी चाहिए कि वे डाक्टरों के काम में बाधा न डालें और सत्ता से सवाल करने की हिम्मत दिखाएं।

● *मंजर आलम, रामपुर डेहरू, मधेपुरा*

लाइलाज बीमारी

देश में कोई भी कानून बनाया जाता है तो उसके पीछे जनहित का तर्क दिया जाता है दूसरी ओर मानव हमारा सबसे बड़ा संसाधन है। इससे हम अपने राष्ट्रीय संसाधन में वृद्धि करते हैं। लेकिन अगर मानव संसाधन का ही ह्रास होने लगे तो राष्ट्रीय स्तर पर भी इसका नुकसान देखने को मिलता है। आज जीने के लिए संघर्ष प्राकृतिक अवस्था की भांति जारी है। कौन से लोग कब और किस प्रकार से बीमारी से ग्रस्त होंगे, कहना मुश्किल है। ऐसे में समाज और सरकार की जिम्मेदारी होती है कि मानव विशेष को ऐसी परिस्थिति प्रदान करें कि वह स्वस्थ जीवन यापन कर स्वयं समाज और राष्ट्र के विकास में उत्तरोत्तर अपना सकारात्मक योगदान दे सके। आज देशभर में राज्यों और केंद्र सरकार तक के स्वास्थ्य विभाग की मौजूदा स्थिति गंभीर है। विकट स्थिति तो यह है कि आने वाले दिनों में भी स्वास्थ्य सुविधा के विपरीत व्यक्ति अधिक से अधिक बीमारियों से ग्रसित होंगे। एक ओर विश्व स्वास्थ्य संगठन प्रति एक हजार व्यक्ति पर एक चिकित्सक होने की बात करता है, जबकि हमारे यहां की स्थिति यह है कि ग्यारह हजार लोगों पर एक चिकित्सक है। जाहिर है, हमारी स्वास्थ्य ही बीमार है जिसके इला की जरूरत है। नित नई तकनीक के बावजूद ज्यादा बीमारियों का हमला बात का प्रमाण है कि हम विकास नहीं विनाश के रास्ते हैं।

● *मिथिलेश कुमार, भागलपुर*

बजट से उम्मीदें

साल 2018 भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए उत्तार-चढ़ाव वाला सफर था। उम्मीदें तो बहुत ज्यादा थीं। बड़े सुधारों की आशा थी। जहां छोटे-मोटे कुछ आर्थिक सुधार हुए, लेकिन कोई बड़ा बदलाव देखने को नहीं मिला। भारत आर्थिक तौर पर मजबूत लगा, मगर इसका श्रेय घरेलू कारणों के बजाय दुनिया में तेल के दामों में गिरावट को ज्यादा मिला। अब उम्मीदें आगामी बजट से हैं। भारत एक निम्न मध्य आय वाला देश है। इस वर्गीकरण के तहत प्रति व्यक्ति सालाना एक हजार डॉलर से कम आमदनी वाले देश निम्न आय वाले होंगे। हालांकि गरीबी को पूरी तरह से दूर करना संभव नहीं है, लेकिन इसका वितरण समुचित ढंग से हो तो गरीबी का मुकाबला किया जा सकता है। इसके लिए कम से कम दो दशकों तक काम करना होगा।

आगामी बजट से आम जनता को बड़ी उम्मीदें हैं। जहां एक बड़ा वर्ग कर छूट की आस लगाए बैठा हैं, वहीं युवाओं को पूरा फोकस शिक्षा सहित उन्हें मिलने वाले रोजगार पर है। बढ़ती महंगाई को काबू में करने के लिए इस बार कौनसा फार्मूला सरकार आम जनता के सामने पेश करेगी, यह देखने वाली बात है। बुजुर्गों को भी बजट से काफी उम्मीद है। पेंशनधारी हों या दूसरे बुजुर्ग, सभी की निगाहें बजट पर हैं। निवेशक भी अपने लिए बजट में कुछ खास तलाशेंगे। जो हो, बजट आम जनता, किसानों और रोजगार पैदा करने वाला होना चाहिए।

● *मनीषा, कुशीनगर*

अमेरिका की दादागीरी

अमेरिका एक युद्धपिपासु देश है। इसका पिछले सत्तर सालों का इतिहास खंगालें तो यह दुनिया के किसी न किसी भूभाग में विशेषकर गरीब और छोटे देशों से अपने आर्थिक और वैचारिक स्वार्थ पूरे करने के लिए उन पर युद्ध थोप कर वहां के लोगों को मौत के घाट उतारता रहा है। कोरिया, जापान, वियतनाम, इराक, अफगानिस्तान, सीरिया, लीबिया आदि देशों की व्यवस्था और उनकी सभ्यता नष्ट करने के साथ-साथ बड़ी संख्या में उन देशों के लोगों की हत्या भी कर चुका है। हाल में ईरान के हार्मोज्दान प्रांत के मुबारक इलाके में अमेरिका अपने एक एमक्यू 4सी ट्राइटन ड्रोन विमान से जासूसी कर रहा था, जिसे अमेरिकी अधिकारियों ने स्वीकार भी किया है, को ईरानी सेना ने अपने रूस निर्मित दमदार रॉडार गाइडेड मिसाइल एस-300 से मार गिराया। ईरानी सेना ने भी इस विमान को एक जासूसी आरक्यू-4 ग्लोबल हॉक के रूप में चिन्हित कर दिया है। वस्तुतः ईरान ने इस अमेरिकी ड्रोन को गिरा कर अमेरिकी दंभ को चकनाचूर कर दिया है। अब प्रश्न है कि खुद अमेरिका अपने देश के किसी भूभाग पर किसी भी अन्य देश के जासूसी विमान से जासूसी करते हुए बर्दाश्त कर लेगा? निश्चित रूप से नहीं। तो ईरान की कार्रवाई को अमेरिकी राष्ट्रपति 'ईरान की बहुत बड़ी गलती' कैसे करार दे सकते हैं? आज सभी को मालूम है कि पूरा विश्व परमाणु हथियार के ढेर पर बैठा है। इस स्थिति में तनाव की एक छोटी-सी चिनगारी भी इस संपूर्ण विश्व को मात्र कुछ मिनटों में तबाह कर सकती है! अमेरिका को यह गलतफहमी नहीं पालनी चाहिए कि वह अजेय है या विश्वयुद्ध छिड़ने पर वह सुरक्षित रह पाएगा।

● *निर्मल कुमार शर्मा, गाजियाबाद*